

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 14: दिति का गर्भाधान

13 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



ब्रह्मा द्वारा स्वयं देवताओं को सुनाई गई तथा मैत्रेय के माध्यम से विदुर तक पहुँची एक कथा: कैसे राक्षसी दिति, सर्वाधिक अशुभ घड़ी में कामवासना से अभिभूत होकर, अपने पति ऋषि कश्यप को एक ऐसे मिलन के लिए बाध्य करती हैं जिसे वे स्वयं असमय जानते थे — और कैसे, उस एक निषिद्ध घड़ी से, दो ऐसे पुत्र उत्पन्न हुए जिनकी भगवान् के प्रति शत्रुता युगों तक गूँजती रही, फिर भी एक पिता के आशीर्वाद में लिपटी हुई कि उन्हीं में से एक पौत्र एक महान तथा तेजस्वी भक्त बनेगा।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। त्रयोदश अध्याय का समापन इस दृश्य से हुआ था कि जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक के महान ऋषिगण अपने वैदिक स्तोत्र उंडेल रहे थे जब भगवान्, दिव्य वराह के रूप में, बचाई गई पृथ्वी को जल के ऊपर धीरे से पुनः स्थापित करके दृष्टि से अन्तर्धान हो गए — सम्पूर्ण सभा उस कथा से चकित रह गई जिससे, सूत कहते हैं, केवल कोई अमानवीय हृदय ही तृप्त हो सकता है। चतुर्दश अध्याय ठीक वहीं से आरम्भ होता है, विदुर की कथा की भूख अभी भी अतृप्त। वे मैत्रेय की ओर पुनः मुड़ते हैं, इस बार एक ऐसा प्रश्न पूछने के लिए जो लगभग गौण प्रतीत होता है — वराह-रूपी भगवान् का दानव हिरण्याक्ष से सामना ठीक कैसे हुआ? — तथा उत्तर में उन्हें कोई युद्ध-वृत्तान्त नहीं अपितु कहीं अधिक गहन कुछ प्राप्त होता है: हिरण्याक्ष तथा उनके भाई हिरण्यकशिपु के जन्म लेने की कथा। यह वह कथा है जिसे मैत्रेय ने स्वयं ब्रह्मा से सुना था, जिन्होंने इसे सीधे देवताओं से सुना था, तथा यह एक ही सन्ध्या के अतिक्रमण पर केन्द्रित है — एक पत्नी का आग्रह, एक पति का अनिच्छापूर्ण समर्पण, तथा एक पिता की गम्भीर सलाह जिसने, अपनी चेतावनी देते हुए भी, दो भयंकर जीवनों की छाया संसार पर पड़ते हुए पहले ही देख ली थी।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 14 (चतुर्दश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: दिति का गर्भाधान
- मुख्य वक्ता: ऋषि मैत्रेय, विदुर को सम्बोधित करते हुए — एक ऐसी कथा सुनाते हुए जो उन्होंने स्वयं ब्रह्मा से सुनी थी — यह सम्पूर्ण कथा श्रीशुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को, तथा सूत गोस्वामी द्वारा ऋषि शौनक एवं नैमिषारण्य की सभा को सुनाई गई
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: मैत्रेय का आश्रम, त्रयोदश अध्याय में वराह-प्रसंग की समाप्ति के तुरन्त पश्चात् विदुर को दिया जा रहा प्रवचन जारी; मैत्रेय की कथा के भीतर, दृश्य ऋषि कश्यप के आश्रम में सन्ध्या-काल में स्थानान्तरित हो जाता है
- मुख्य विषय: हिरण्याक्ष के विषय में विदुर का पुनः प्रश्न; अपने पति कश्यप से एक निषिद्ध घड़ी में दिति की काम-प्रेरित प्रार्थना; विवाह की पवित्रता तथा उस घड़ी के संकट पर कश्यप की सलाह; उनका अन्ततः समर्पण, तत्पश्चात् दो दुष्ट पुत्रों की उनकी शाप-सदृश भविष्यवाणी तथा साथ ही उनका यह आशीर्वाद कि उनकी सन्तानों में से ही एक भक्त पौत्र उत्पन्न होगा
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 14, श्लोक 1-50
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

विदुर का पुनः प्रश्न तथा मैत्रेय की प्रशंसा

सूत नैमिषारण्य के ऋषियों को बताते हैं कि विदुर, जिन्होंने भगवान् की स्तुतियाँ सुनने का व्रत लिया था, चाहे उन्होंने मैत्रेय के अपने मुख से कथा कितनी भी सुनी हो, वे सन्तुष्ट अनुभव ही नहीं कर पा रहे थे। अपने हाथ श्रद्धापूर्वक जोड़कर, वे पुनः पूछते हैं — इस बार भगवान् के, वराह-रूप में, हिरण्याक्ष से हुए सामने की विशिष्ट परिस्थितियों के विषय में, जो दिति के पुत्रों में सबसे पहले दैत्य-मार्ग पर चलने वाले थे। जब वे अपने दाँतों की नोकों पर पृथ्वी को सन्तुलित करके क्रीड़ा कर रहे थे, विदुर पूछते हैं, वह दानव-राज के साथ सामना आखिर कैसे हुआ?

श्रीशुक उवाच ।

निशम्य कौषारविणोपवर्णितां कथां कारणसूकरात्मनः ।

śrī-śuka uvāca niśamya kauṣāraviṇopavarṇitāṁ kathāṁ kāraṇa-sūkarātmanah

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: सूकर-अवतार के विषय में मैत्रेय (कुसारु के पुत्र) द्वारा वर्णित कथा को सुनने के पश्चात् भी, [विदुर, अतृप्त रहते हुए, ऋषि से पुनः प्रश्न करते हैं।] (स्कन्ध 3, अध्याय 14, श्लोक 1)

मैत्रेय इस प्रश्न से स्पष्ट रूप से प्रसन्न होते हैं। वे विदुर को बताते हैं कि उन्होंने अच्छा प्रश्न पूछा है, क्योंकि भगवान् की अवतार-कथा को छूने वाली कोई भी जिज्ञासा स्वयं एक ऐसी रस्सी-काटने वाली वस्तु है जो प्रत्येक मरणशील प्राणी को बाँधने वाले जन्म-मृत्यु के पाश को काट देती है। इसके प्रमाण के रूप में, वे विदुर को बालक ध्रुव का स्मरण कराते हैं — एक साधारण बालक जो, ऋषि नारद द्वारा उन्हें सुनाई गई श्रीहरि की कथा के माध्यम से, स्वयं मृत्यु के सिर पर, शब्दशः, अपना पैर रखने का साहस पाकर, भगवान् के अपने धाम तक शरीर सहित आरोहण कर सका। इसी भावना में, मैत्रेय कहते हैं, वे अब वह प्रसंग सुनाएँगे जो उन्होंने स्वयं कभी सुना था — एक ऐसा वृत्तान्त जिसे सर्वप्रथम ब्रह्मा, देवताओं के देव, ने स्वयं देवताओं द्वारा पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में सुनाया था। और इस प्रकार वास्तविक कथा आरम्भ होती है: दिति, दक्ष की एक पुत्री, अन्य किसी भी पत्नी की भाँति पुत्र पाने की उत्सुक, अपने पति कश्यप, मरीचि के पुत्र, को उस समय खोजती हैं जब केवल सन्ध्या हुई थी — मैत्रेय स्पष्ट रूप से कहते हैं, काम-वासना के बाणों से डंसी हुई। कश्यप, अपनी ओर से, दूध में पके चावल की आहुतियाँ परम पुरुष को अभी-अभी अर्पित करके, ध्यान में लीन बैठे थे, यह जानते हुए कि सूर्य अस्त होने ही वाला था।



विदुर, अभी भी असन्तुष्ट, मैत्रेय से भगवान् के हिरण्याक्ष के साथ सामने के विषय में पूछते हैं; मैत्रेय प्रश्न की प्रशंसा करते हैं, यह स्मरण करते हुए कि बालक ध्रुव ने श्रीहरि की कथा के माध्यम से स्वयं मृत्यु को कैसे जीता, इससे पहले कि वे उस प्रसंग की ओर मुड़ें जो उन्होंने ब्रह्मा से सुना था (श्लोक 1-8)।

सन्ध्या को निषेद्ध घड़ी में दिति की प्रार्थना

अपने पति के प्रति दिति की प्रार्थना अनावृत तथा तीव्र है। वे कामदेव के आक्रमण की तुलना एक जंगली हाथी द्वारा एक केले के वृक्ष को कुचलने से करती हैं — एक असहाय स्त्री, वे कहती हैं, अपने पति के ही कारण सताई जा रही, अपनी सौतों को पहले से ही सन्तानों से धन्य देखने के दुःख को सहन करने में असमर्थ। वे कश्यप को एक पुरानी पारिवारिक कथा भी स्मरण कराती हैं: उनके पिता दक्ष ने, अपनी पुत्रियों के प्रति स्नेही होने के कारण, विवाह से पहले प्रत्येक से पूछा था कि वे किसे चुनना चाहती हैं; उनकी अनकही पसन्द को भाँपते हुए, उन्होंने अपनी तेरह पुत्रियाँ, दिति सहित, कश्यप को ही दे दीं, ठीक इसलिए क्योंकि वे उनके स्वभाव के अनुकूल थीं। एक पति, वे कहती हैं, एक समर्पित पत्नी द्वारा जन्मे पुत्र के माध्यम से पुनर्जन्म लेता है — अतः उनकी प्रार्थना, वास्तविक व्यथा से उत्पन्न, उस व्यक्ति द्वारा अनुत्तरित न रहे जो इसे प्रदान करने में इतना सक्षम है।

दितिरुवाच ।

एष मां त्वत्कृते विद्वन् काम आत्तशरासनः ।

दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भामिव मतङ्गजः ॥

ditir uvāca eṣa mām tvat-kṛte vidvan kāma ātta-sārāsanaḥ dunoti dīnām vikramya rambhām iva mataṅgajaḥ

अर्थ: दिति ने कहा: हे विद्वान्, यह कामदेव, धनुष ताने हुए, आपके ही कारण मुझ दीन स्त्री को बलपूर्वक इस प्रकार पीड़ित कर रहा है जैसे कोई जंगली हाथी केले के वृक्ष को रौंद दे। (स्कन्ध 3, अध्याय 14, श्लोक 9)

मैत्रेय स्पष्ट करते हैं कि दिति यहाँ कोई गणना नहीं कर रही; वे, पाठ के अपने ही शब्दों में, एक ऐसी स्त्री हैं जिनकी बुद्धि पहले ही उनकी तीव्र लालसा से धुँधली हो चुकी है। कश्यप इसे स्पष्ट रूप से देखते हैं। वे न तो उन्हें डाँटते हैं, न ही सीधे मना करते हैं — इसके बजाय, वे उन्हें एक ऐसे पति के शान्त, विचारपूर्ण स्वर में उत्तर देते हैं जो उनकी इच्छा की वैधता तथा उस क्षण के संकट, जिसमें उन्होंने इसे व्यक्त करना चुना है, दोनों को समझता है।



सन्ध्या के समय, काम-वासना तथा अपनी सौतों के सौभाग्य के दुःख से अभिभूत होकर, दिति अपने पति कश्यप से पुत्र के लिए आग्रह करती हैं, यह स्मरण करते हुए कि उनके पिता दक्ष ने कैसे उन्हें कश्यप को विवाह में दिया था (श्लोक 9-14)।

विवाह की पवित्रता पर कश्यप की सलाह

आगे जो आता है वह इस सम्पूर्ण प्रसंग के सर्वाधिक कोमल तथा दार्शनिक रूप से समृद्ध अंशों में से एक है, तथा इस पर रुकना उचित है, क्योंकि यह इस अध्याय को एक सरल नैतिक कथा के रूप में पढ़ने की किसी भी दृष्टि को जटिल बना देता है। कश्यप की पहली प्रवृत्ति अस्वीकृति नहीं अपितु कृपा है: वे दिति को स्पष्ट रूप से बताते हैं कि वे उनकी इच्छा पूर्ण करेंगे, क्योंकि कौन-सा पति उस पत्नी की इच्छा को अस्वीकार करेगा जिसके माध्यम से वह मानव-जीवन के तीनों लक्ष्य — सांसारिक समृद्धि, इन्द्रिय-तृप्ति तथा धार्मिक पुण्य — प्राप्त करता है? वे आगे बढ़कर विवाह का एक सम्पूर्ण दर्शन प्रस्तुत करते हैं: जैसे कोई नौका किसी यात्री को समुद्र पार कराती है, वैसे ही विवाहित जीवन एक गृहस्थ को सांसारिक दुःख के समुद्र के पार ले जाता है, अपने साथ, एक अर्थ में, शेष तीन आश्रमों — ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी — को भी लेकर, जो सभी, व्यवहार में, गृहस्थ के सहारे पर ही निर्भर हैं। पत्नी, शास्त्र कहते हैं, पुरुष के शरीर का दूसरा आधा भाग है; गृहस्थी का सम्पूर्ण भार उस पर रखकर, पुरुष निरन्तर चिन्ता से मुक्त होकर संसार में विचरण करता है। तथा जैसे किसी किले का सेनापति आक्रमणकारियों को उस सरलता से दबा देता है जो दूसरों को, खुले मैदान में उजागर होकर, प्राप्त नहीं होती, वैसे ही गृहस्थ — विवाहित जीवन के भीतर आश्रय पाकर — इन्द्रियों को उस सरलता से जीत लेता है जिसे प्राप्त करने में अन्य आश्रमों के लोग संघर्ष करते हैं। कश्यप विनम्रतापूर्वक यह भी स्वीकार करते हैं कि वे दिति की भक्ति का ऋण एक जीवन में तो क्या, आने वाले अनेक जन्मों में भी पूर्णतः नहीं चुका सकते।

फिर भी — तथा यही वह मोड़ है जिस पर सम्पूर्ण अध्याय टिका है — कश्यप उनसे प्रतीक्षा करने का आग्रह करते हैं। शीतलता के कारण नहीं, अपितु ठीक इस कारण कि यह कैसी घड़ी है। वे इसका सटीक वर्णन करते हैं: एक ऐसी घड़ी जो भयंकर प्राणियों के अनुकूल है, जिसमें भूत तथा प्रेत, जो भगवान् रुद्र के अनुचरों का समूह बनाते हैं, विचरण करते हैं, तथा जिसमें रुद्र स्वयं, अपने बैल पर सवार होकर, अपने भूतगणों से घिरे हुए संसार में घूमते हैं — उनके जटा-जूट श्मशान-भूमि की धूल से अस्त-व्यस्त तथा मलिन, उनका शरीर भस्म से श्वेत, उनके तीनों नेत्र सब कुछ देखते हुए। कश्यप का शिव का यह वर्णन न तो तिरस्कारपूर्ण है और न ही सामान्य अर्थ में भयभीत करने वाला; इसके बजाय, यह श्रद्धामय विनम्रता का भाव लिए हुए है। वे बताते हैं कि शिव किसी को भी आत्मीय या पराया नहीं मानते, किसी को भी अधिक या कम योग्य नहीं समझते — तथा यह कि उनका प्रतीत होने वाला दरिद्रतापूर्ण तथा विचित्र आचरण कोई दोष नहीं अपितु एक शिक्षा है, जो संसार को शारीरिक

वैभव के प्रति उदासीनता विकसित करना सिखाने के लिए है, भले ही जो अपने स्वयं के शृंगार को महत्त्व देते हैं वे उसे समझ न पाकर उसका उपहास करें। स्वयं ब्रह्मा भी, कश्यप कहते हैं, शिव द्वारा निर्धारित सीमाओं का सम्मान करते हैं; वे अकेले ही इस ब्रह्माण्ड के वास्तविक कारण हैं, उनकी माया मात्र उनकी दासी है, चाहे उनका बाह्य आचरण कितना भी अगम्य प्रतीत क्यों न हो।

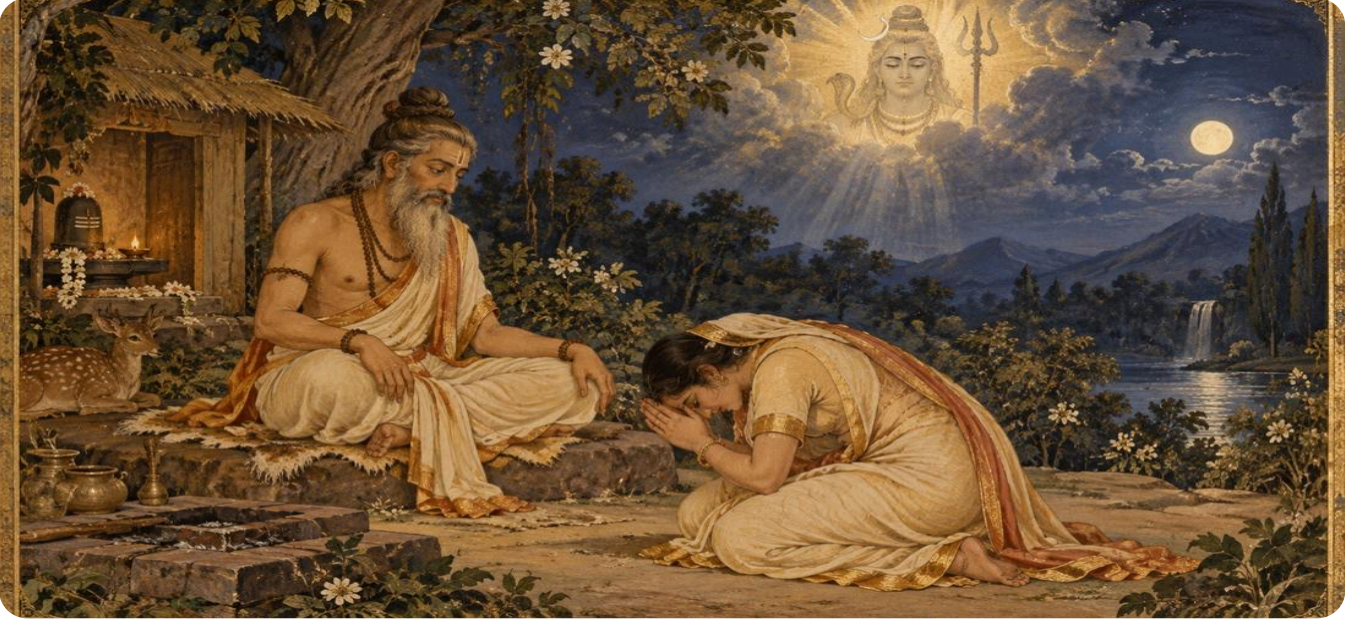


कश्यप कोमलतापूर्वक दिति की इच्छा पूर्ण करने पर सहमत होते हैं, विवाहित जीवन की पवित्रता की प्रशंसा करते हुए, परन्तु उन्हें चेतावनी देते हैं कि वर्तमान घड़ी अशुभ है — ठीक वही घड़ी जिसमें भगवान् रुद्र तथा उनके भूतगणों का समूह संसार में विचरण करता है (श्लोक 15-28)।

दिति का आग्रह, तथा कश्यप का समर्पण

दिति, फिर भी, समझाने से परे हैं। मैत्रेय उन्हें, बिना किसी चापलूसी के, एक ऐसी स्त्री के रूप में वर्णित करते हैं जिनकी बुद्धि पूर्णतः काम से अभिभूत हो चुकी है — वे उस पवित्र ब्राह्मण को उनके वस्त्र से पकड़ लेती हैं, एक साधारण स्त्री की भाँति, दक्ष की पुत्री होते हुए भी, सम्पूर्ण लज्जा को त्यागकर। कश्यप, अपनी पत्नी के इस असामान्य आग्रह को, जो उन्हें निषिद्ध मार्ग पर ले जाने वाला ज्ञात था, देखकर, विधाता की इच्छा मानकर नत होते हैं तथा उनके साथ एकान्त की खोज करते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि पाठ आगे जो होता है उसे कैसे प्रस्तुत करता है: बिना सोचे-समझे किए गए किसी कार्य के रूप में नहीं, अपितु ऐसे कार्य के रूप में जिसके तुरन्त पश्चात् अनुशासित प्रायश्चित्त हो। कश्यप स्नान करते हैं, अपने श्वास तथा वाणी को नियन्त्रित करते हैं, तथा पवित्र अक्षर ॐ का जाप आरम्भ करते हैं, अपने विचार को इसके अर्थ, अपरिवर्तनीय, स्वयं-प्रकाशित शाश्वत ब्रह्म पर स्थिर करते हुए। दिति भी अपने आचरण से जुड़े पाप के कारण लज्जा अनुभव करती हैं, हे विदुर (भरत के वंशज)। वे, अतः, पुनः पवित्र ब्राह्मण के पास जाती हैं तथा, अपना मुख झुकाए हुए, उनसे बात करती हैं (निम्नलिखित प्रकार से)।

दिति का भय केन्द्रित तथा विशिष्ट है: वे भयभीत हैं कि भगवान् रुद्र, जिन्हें उन्होंने मिलन के समय के कारण ही अपमानित किया है, अब उनके गर्भ में स्थापित बीज को नष्ट कर देंगे। वे उन्हें अत्यन्त श्रद्धापूर्ण शब्दों में अपनी वन्दना अर्पित करती हैं — वह अजेय, सर्व-आनन्दमय भगवान् जो अपने भक्तों की व्यथा को दूर करते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर दण्ड भी देते हैं; प्रलयकाल के क्रोध के साकार रूप, फिर भी स्वभाव से पूर्णतः अहिंसक। वे एक बन्धुत्व के सम्बन्ध का भी आह्वान करती हैं: चूँकि सती, शिव की अपनी पत्नी, दिति की वास्तविक बहन थीं — दोनों दक्ष की पुत्रियाँ — वे प्रार्थना करती हैं कि उनके देवर, स्वभाव से अत्यन्त करुणामय, उस स्त्री पर भी दया करें जिसने उन्हें अपमानित किया है, ठीक वैसे ही जैसे एक शिकारी की दया भी सबसे विनम्र प्राणी द्वारा माँगी जा सकती है।



अपने किए हुए कार्य के भय तथा लज्जा से अभिभूत होकर, दिति अपना मुख झुकाए हुए कश्यप के पास जाती हैं, तथा भगवान् रुद्र, अपने देवर, से श्रद्धापूर्ण प्रार्थना करती हैं, यह प्रार्थना करते हुए कि वे उनके गर्भ में स्थापित बीज को नष्ट न करें (श्लोक 29-35)।

कश्यप का शाप — तथा उसके भीतर छिपा आशीर्वाद

कश्यप, अपनी सन्ध्या-उपासना पूर्ण करके, अपनी पत्नी को भय से काँपते हुए तथा उसी सन्तान के लिए, जिसे उन्होंने अभी-अभी गर्भ में धारण किया है, इस लोक तथा परलोक दोनों के कल्याण की याचना करते हुए देखते हैं। जो वे अब उन्हें बताते हैं वह बिना किसी टाल-मटोल के दिया जाता है। चूँकि गर्भाधान के समय उनकी बुद्धि अशुद्ध थी, चूँकि घड़ी स्वयं अशुभ थी, चूँकि उन्होंने उनके स्पष्ट निषेध का उल्लंघन किया, तथा चूँकि उन्होंने देवताओं की पूर्णतः अवहेलना की, उनसे एक जोड़ी पुत्र उत्पन्न होंगे — ऐसे पुत्र जिनका स्वभाव ही दुष्ट तथा अयोग्य होगा, ऐसे पुत्र जो तीनों लोकों तथा उनके रक्षक देवताओं को बार-बार व्यथा से रुदन करवाएँगे। जब, समय आने पर, वे असहाय तथा निर्दोष प्राणियों की हत्या करने, स्त्रियों की पवित्रता भंग करने तथा महान् आत्माओं को क्रोधित करने में प्रवृत्त होंगे, तब स्वयं भगवान् — ब्रह्माण्ड के शासक, प्रत्येक लोक के आनन्ददाता — क्रोधित होकर, अपने दिव्य धाम से इस संसार में अवतरित होकर, उन्हें उसी प्रकार नष्ट करेंगे जैसे मैत्रेय कहते हैं, इन्द्र ने अपनी वज्र से पर्वतों को नष्ट किया था।

कश्यप उवाच ।

अप्रायत्यादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत ।

मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥

भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ ।

लोकान् सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः ॥

kaśyapa uvāca aprāyatyād ātmanas te doṣān mauhūrtikād uta man-nideśāticāreṇa devānām cātiheḷanāt bhaviṣyatas tavābhadrāv abhadre jāṭharādhamau lokān sa-pālāms trīmś caṇḍi muhur ākrandayīṣyataḥ

अर्थ: कश्यप ने कहा: तुम्हारी बुद्धि की अशुद्धता, घड़ी के दोष, मेरे निर्देश के उल्लंघन तथा देवताओं की अवहेलना के कारण, हे क्रोधशीले, तुम्हारे गर्भ से दो अशुभ तथा नीच पुत्र उत्पन्न होंगे, जो तीनों लोकों को उनके रक्षकों सहित बार-बार रुलाएँगे। (स्कन्ध 3, अध्याय 14, श्लोक 37-38)

इस समाचार पर दिति की प्रतिक्रिया स्वयं उल्लेखनीय है, तथा एक माता की अन्तरात्मा को उनके पुत्रों के जन्म से पहले ही कार्यरत प्रकट करती है। वे कहती हैं कि वे चाहेंगी कि उनके पुत्र सीधे भगवान् के ही हाथों मरें — जिनकी शक्तिशाली भुजा सुदर्शन चक्र से सुशोभित है — किसी क्रोधित ब्राह्मण के शाप के अन्तर्गत नहीं मरें, हे प्रभु। यहाँ तक कि नरक के निवासी भी उस व्यक्ति को कोई अनुग्रह दिखाने से इनकार करते हैं जो किसी ब्राह्मण के क्रोध से नष्ट होता है, अथवा जो प्राणियों के लिए आतंक बना हो, चाहे मृत्यु के पश्चात् उसे किसी भी योनि में भेजा जाए। यह एक छोटा किन्तु सूचक क्षण है: दिति, पहले से ही अपने पुत्रों के गर्भाधान की विधि पर पछताती हुई, कम से कम उनके लिए कुछ मर्यादा वाली मृत्यु की कामना करती हैं — भगवान् द्वारा स्वयं मिली मृत्यु, किसी ऋषि के क्रोध से मुरझाई हुई मृत्यु के बजाय।

इसके प्रति कश्यप का उत्तर वह बिन्दु है जहाँ अध्याय चेतावनी से सान्त्वना की ओर मुड़ता है। उनकी वास्तविक व्यथा, उनके पश्चाताप, तथा उनके सही निर्णय के शीघ्र लौट आने को देखकर — तथा भगवान् विष्णु, भगवान् शिव तथा स्वयं कश्यप के प्रति उनकी गहन श्रद्धा को देखकर भी — वे उन्हें बताते हैं कि उनके ज्येष्ठ पुत्र के चार पुत्रों में से एक पवित्रतम पुरुषों के लिए भी सम्मान के योग्य सिद्ध होगा; लोग उसकी कीर्ति को भगवान् की अपनी महिमा के साथ ही गाएँगे।

कश्यप उवाच ।

कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् ।

भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥

पुत्रस्यैव च पुत्राणां भवितैकः सतां मतः ।

गास्यन्ति यद्यशः शुद्धं भगवद्यशसा समम् ॥

kaśyapa uvāca kṛta-śokānutāpena sadyaḥ pratyavamarśanāt bhagavaty uru-mānāc ca bhavem mayy api cādarāt putrasyaiva ca putrāṇām bhavitaikaḥ satām mataḥ gāsyanti yad-yaśaḥ śuddham bhagavad-yaśasā samam

अर्थ: कश्यप ने कहा: तुम्हारा शोक अब सच्चे पश्चाताप तथा निष्पक्ष आत्म-निरीक्षण में बदल चुका है, तथा भगवान् के प्रति, भगवान् शिव के प्रति तथा मेरे प्रति तुम्हारी गहन श्रद्धा के कारण — तुम्हारे ही पुत्र के पुत्रों में से एक को साधुजन अपने ही समान अपनाएँगे, तथा उसकी निर्मल कीर्ति एक दिन भगवान् की महिमा के साथ ही गाई जाएगी। (स्कन्ध 3, अध्याय 14, श्लोक 43-44)

यद्यपि यह अध्याय उस बालक का नाम स्पष्ट रूप से नहीं लेता, तथापि विस्तृत भागवत इसे स्पष्ट करता है: वह प्रह्लाद हैं, जिनका जन्म हिरण्यकशिपु से होना नियत है — दिति के दोनों पुत्रों में ज्येष्ठ — तथा जो आगे चलकर अटूट भक्ति की परम्परा के सर्वाधिक आदरणीय उदाहरणों में से एक के रूप में स्मरण किए जाते हैं। जिस प्रकार अग्नि में तपाए जाने से निम्न कोटि का सोना शुद्ध हो जाता है, कश्यप कहते हैं, उसी प्रकार पवित्र आत्माएँ उसकी शत्रुता-रहितता तथा उसके उदात्त चरित्र का अनुकरण करने हेतु अपने हृदय को अनुशासन के माध्यम से शुद्ध करेंगी। यह पौत्र एक महान् भक्त होगा: उदार, महान्-आत्मा, तथा श्रेष्ठतम में भी श्रेष्ठ, अपने हृदय में भगवान् विष्णु को स्थापित करके, गहन भक्ति से शुद्ध होकर, शरीर के साथ प्रत्येक मिथ्या पहचान त्याग देगा। उसे इन्द्रिय-सुख के प्रति कोई आसक्ति नहीं होगी, वह सद्गुण में दृढ़

रहेगा, दूसरों की समृद्धि में उतना ही आनन्दित होगा जितना उनके दुःख में दुःखी होगा, तथा — किसी को भी अपना शत्रु न मानते हुए — संसार के दुःखों को उसी प्रकार दूर करेगा जैसे चन्द्रमा ग्रीष्म की गर्मी को शान्त करता है। वह कमल-नयन भगवान् को, ध्यान में तथा प्रत्यक्ष रूप से भी, अपने हृदय में देखेगा, ऐसे रूप में जो सदैव अपने भक्तों की इच्छाओं के प्रति सजग रहता है।

यह विचारणीय है कि कश्यप की चेतावनी तथा कश्यप का आशीर्वाद एक ही साँस में, उसी एक गर्भ को सम्बोधित करते हुए, क्यों आते हैं। दो दुष्ट पुत्र तथा वह भक्त पौत्र एक-दूसरे के विरुद्ध तौले गए पृथक् परिणाम नहीं हैं; वे एक ही निरन्तर विधान हैं जो एक उद्विग्न वंश में स्वयं को प्रकट कर रहा है। दिति की असामयिक इच्छा का वास्तविक परिणाम होता है — कश्यप अपने कहे हुए एक भी शब्द को वापस नहीं लेते — परन्तु वह परिणाम उनके परिवार को भगवान् की पहुँच से बाहर नहीं कर देता। यदि कुछ होता भी है तो यही कि वह उसी मार्ग का निर्माण कर देता है जिससे भगवान् का सर्वाधिक प्रिय भक्त संसार में प्रवेश करेगा। समय तथा धर्म के विषय में जो शिक्षा दृश्य में है, उसके भीतर यही गहरी शिक्षा छिपी है: दिव्य कृपा केवल निर्दोष परिवारों के लिए ही सीमित नहीं है, तथा एक हृदय जो सच्चे पश्चाताप की ओर मुड़ता है, जैसा दिति का यहाँ होता है, वह एक ऐसा द्वार बन सकता है जिससे स्वयं-निर्मित दुर्भाग्य भी संसार को एक भावी सन्त प्रदान कर दे (श्लोक 43-49)।



कश्यप भविष्यवाणी करते हैं कि इस असमय मिलन से दो दुष्ट पुत्र उत्पन्न होंगे, परन्तु भविष्यवाणी को मृदु करते हैं: दिति के वास्तविक पश्चाताप को देखकर, वे प्रतिज्ञा करते हैं कि उनके वंशजों में से एक भक्त पौत्र एक महान् तथा तेजस्वी आत्मा बनेगा, जो पवित्रजनों द्वारा भी प्रिय होगा (श्लोक 36-49)।

दिति की स्वीकृति

अध्याय एक ऐसे स्वर पर समाप्त होता है जो न तो पूर्णतः दुःखद है और न ही पूर्णतः विजयी, अपितु दोनों से कहीं अधिक जटिल — एक अप्रत्याशित स्थान में पाई गई माता की शान्ति। दिति, यह सुनकर कि उनका पौत्र एक महान् भक्त होगा, वास्तविक आनन्द अनुभव करती हैं; तथा उसी क्षण, मैत्रेय हमें बताते हैं, वे स्वीकार कर लेती हैं — केवल विवशता से नहीं अपितु एक ऐसी बुद्धि से जो उदार हो गई है — कि उनके अपने पुत्र स्वयं श्रीकृष्ण के हाथों मृत्यु पाने के लिए नियत हैं। यह, अपने ढंग से, वही इच्छा है जिसे उन्होंने पहले व्यक्त किया था, अब पूर्ण रूप में प्रदान की गई: किसी ब्राह्मण के शाप के बजाय भगवान् के अपने हाथों दी गई मृत्यु, अब इस और सान्त्वना में लिपटी हुई कि इस उद्विग्न वंश से भी, भगवान् के प्रति भक्ति अपना मार्ग संसार में खोज ही लेगी।

मैत्रेय उवाच ।

श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् ।

पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वासीन्महामना ॥

*maitreya uvāca śrutvā bhāgavataṁ pautram amodata ditir bhṛśam putrayoś ca vadhaṁ kṛṣṇād
viditvāsīn mahā-manāḥ*

अर्थ: मैत्रेय ने कहा: यह सुनकर कि उनका पौत्र भगवान् का भक्त होगा, दिति अत्यन्त आनन्दित हुई; तथा यह जानते हुए भी कि उनके दोनों पुत्र कृष्ण द्वारा मारे जाएँगे, वे फिर भी उदार-हृदय हो गई। (स्कन्ध 3, अध्याय 14, श्लोक 50)

इसके साथ, तृतीय स्कन्ध का चतुर्दश अध्याय समाप्त होता है — इसका समापन-पद्य पुष्टि करता है कि इसने, अन्य बातों के साथ, दिति तथा कश्यप के बीच के संवाद का वर्णन किया है। पंचदश अध्याय मैत्रेय की कथा को एक सर्वथा भिन्न दृश्य की ओर आगे ले जाएगा: सनक तथा उनके तीन भाइयों द्वारा द्वारपालों जय तथा विजय के विरुद्ध शाप का उच्चारण, वह प्रसंग जो अन्ततः स्पष्ट करता है कि दिति के यही दोनों पुत्र, जो शीघ्र ही हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु के रूप में जन्म लेंगे, आखिर दानवों के रूप में क्यों जन्मे।



दिति आने वाले भक्त पौत्र के विषय में सुनकर वास्तविक आनन्द अनुभव करती हैं, तथा उदार हृदय से स्वीकार करती हैं कि उनके अपने दोनों पुत्र स्वयं भगवान् द्वारा मारे जाने के लिए नियत हैं (श्लोक 50)।

इस अध्याय की मुख्य शिक्षाएँ

1. एक वैध इच्छा का भी सही तथा गलत समय होता है। कश्यप कभी भी यह अस्वीकार नहीं करते कि पुत्र के लिए दिति की इच्छा उचित है, न ही यह कि विवाह स्वयं सांसारिक दुःख के समुद्र के पार जाने का एक पवित्र मार्ग है — उनकी सावधानी पूर्णतः समय के विषय में है, यह स्मरण कराते हुए कि धर्म शायद ही कभी इस बात का प्रश्न है कि क्या इच्छित है, अपितु इस बात का है कि इसे कब तथा कैसे अपनाया जाता है (श्लोक 16-22)।

2. परिणाम किसी कार्य की केवल बाह्य आकृति से नहीं अपितु उसकी परिस्थितियों से उत्पन्न होते हैं। कश्यप आने वाली बात के चार पृथक् कारण गिनाते हैं — बुद्धि की अशुद्धता, अशुभ घड़ी, उनकी अपनी सलाह की अवहेलना, तथा देवताओं के प्रति अनादर — यह स्मरण कराते हुए कि भागवत कारण तथा प्रभाव को ऐसी सटीकता से देखता है जो सरल नैतिकतावाद का विरोध करती है (श्लोक 37-38)।

3. पश्चाताप एक पहले से गतिमान कथा को भी पुनः आकार दे सकता है। दिति के पुत्र फिर भी उसी प्रकार जन्म लेते हैं जैसा उन्हें बताया गया था, फिर भी उनका सच्चा पश्चाताप कश्यप से एक पूर्णतः अप्रत्याशित आशीर्वाद निकालने के लिए पर्याप्त है — कि उसी वंश से, जिसे उन्होंने नष्ट कर दिया समझा था, एक भक्त पौत्र उत्पन्न होगा (श्लोक 43-49)।

4. भक्ति कभी भी किसी एक परिवार के गुण तक सीमित नहीं रहती। यह कि श्रेष्ठता स्वयं हिरण्यकशिपु के वंशजों में से भी उभर सकती है, भागवत के इस सम्पूर्ण चक्र की एक केन्द्रीय शिक्षा है — यह आश्वासन कि कोई भी वंश, चाहे अपनी जड़ में कितना भी उद्विग्न क्यों न हो, कृपा की पहुँच से बाहर नहीं है (श्लोक 46-49)।

5. एक माता का प्रेम हानि की पूर्व-सूचना में भी शान्ति पा सकता है। दिति की उदारता अध्याय के अन्त में — यह स्वीकार करते हुए कि उनके पुत्र भगवान् के अपने हाथों से मरेंगे, तथा इसमें निराशा के बजाय सान्त्वना पाते हुए — जो नहीं बदला जा सकता, एक बार यह समझ लेने पर कि यह किसी उच्चतर उद्देश्य की सेवा करता है, उसकी भक्तिपूर्ण स्वीकृति का उदाहरण प्रस्तुत करती है (श्लोक 50)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस बात में कुछ शान्त शिक्षाप्रद है कि यह अध्याय, जिसे प्रायः केवल “हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु के जन्म” के रूप में संक्षेपित किया जाता है, अपने अधिकांश श्लोक स्वयं दानवों की तुलना में एक पति की धैर्यपूर्ण सलाह तथा एक पत्नी के भय एवं पश्चाताप पर व्यय करता है। कश्यप यहाँ दूर से निर्णय सुनाने वाले किसी कठोर नैतिक प्राधिकरण के रूप में प्रकट नहीं होते; वे, पूरे समय, एक समर्पित पति हैं जो अपनी पत्नी की इच्छा का सम्मान करने का प्रयास कर रहे हैं तथा साथ ही उस अनुशासन के प्रति निष्ठान् बने रहना चाहते हैं जिसे वे उस क्षण में उनसे बेहतर समझते हैं। तथा दिति को भी केवल एक चेतावनी-स्वरूप पात्र तक सीमित नहीं किया गया है — उनकी लालसा को वास्तविक सहानुभूति के साथ देखा गया है, उनका बाद का भय वास्तविक कोमलता के साथ, तथा उनके पुत्रों का आने वाला अन्धकार भी, अन्ततः, निराशा से नहीं अपितु एक दादी की अक्षुण्ण आशा के साथ मिलता है, उस पौत्र के लिए जिससे वे सम्भवतः कभी नहीं मिल पाएँगी। शास्त्र यह सिखा रहा प्रतीत होता है, कोमलतापूर्वक तथा बिना उपदेश दिए, कि सबसे गम्भीर परिणाम भी निरन्तर प्रेम तथा निरन्तर कृपा के ताने-बाने के भीतर ही सामने आते हैं — कि कोई भी एक घड़ी, चाहे कितनी भी अशुभ हो, भक्ति के किसी परिवार की कथा में पुनः अपना मार्ग खोजने के द्वार को बन्द नहीं करती।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने ही जीवन के किसी निर्णय पर विचार करें जहाँ प्रश्न यह नहीं है कि कोई बात सही है या नहीं, अपितु यह है कि वह कब सही है — एक ऐसा शब्द जो कल बोला जाने पर दयालु होता परन्तु अभी बोलने पर आघातकारी है, एक ऐसा अनुरोध जो उचित है परन्तु दुर्भाग्यपूर्ण समय पर किया गया है, एक ऐसी इच्छा जो स्वयं में गलत नहीं है परन्तु इसे कार्यान्वित करने से पहले थोड़ा और रोक कर रखने की माँग करती है। दिति के प्रति कश्यप की धैर्यपूर्ण, सम्मानजनक सलाह को एक आदर्श बनने दें: इच्छा को अस्वीकार किए बिना उसका सम्मान करें, परन्तु शीघ्रता को तत्परता न समझें। तथा यदि आप पाते हैं, जैसा दिति ने पाया, कि अधीरता आपको पहले ही कहीं ऐसे स्थान पर ले जा चुकी है जिस पर अब आपको पछतावा है, तो उनके उदाहरण को भी अपना मार्गदर्शक बनने दें — सच्चा पश्चाताप, निराशा के बजाय, ही एक कठिन

परिस्थिति में कृपा को पुनः खींच लाता है। अपने दिन में लौटने से पहले, रुकें तथा शान्तिपूर्वक दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” उस स्मरण को अपने किए जाने वाले प्रत्येक कार्य में समय की अपनी समझ को स्थिर करने दें, यह विश्वास करते हुए कि भगवान् की अपनी कृपा किसी अपूर्ण आरम्भ से भी भलाई ला सकती है।

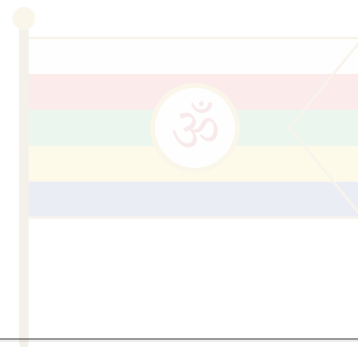
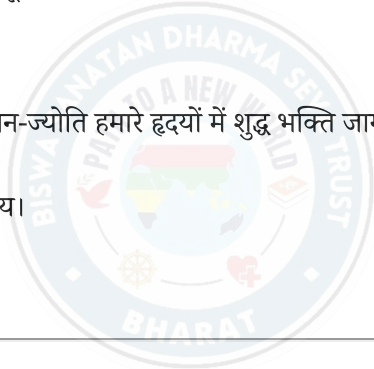
उपसंहार

तृतीय स्कन्ध का चतुर्दश अध्याय हिरण्याक्ष के विषय में विदुर के सरल प्रश्न का उत्तर एक साधारण जन्म-वृत्तान्त से कहीं अधिक गहरी कथा से देता है। यह मैत्रेय की प्रशंसा से आरम्भ होता है भगवान् के अपने कार्यों में की गई किसी भी जिज्ञासा के लिए, विवाह, समय तथा भगवान् शिव के वास्तविक स्वरूप पर दिति की काम-प्रेरित प्रार्थना तथा कश्यप की गम्भीर सलाह से होकर गुजरता है, तथा एक पति के अपने ही बेहतर निर्णय के विरुद्ध की गई गर्भाधान तक पहुँचता है, ठीक उस घड़ी में जब संसार की उग्रतर शक्तियाँ विचरण कर रही होती हैं। जो आगे आता है वह न तो सरल दण्ड है और न ही सरल कृपा, अपितु दोनों साथ-साथ: एक शाप जो दो पुत्रों को महान् दुष्टता के लिए नियत करता है तथा एक अप्रत्याशित आशीर्वाद जो एक पौत्र को महान् भक्ति के लिए नियत करता है — तथा एक माता का हृदय, अध्याय के अन्तिम श्लोक तक, दोनों सत्त्यों को एक साथ धारण करने के लिए पर्याप्त स्थान पाता हुआ। एक दानव की मृत्यु के विषय में विदुर का प्रश्न, मैत्रेय के हाथों में, इस बात पर एक चिन्तन बन जाता है कि कैसे एक असमय आरम्भ भी अन्ततः कृपा की सम्भावना को बन्द नहीं कर पाता, जो पंचदश अध्याय के उस शाप के वृत्तान्त की भूमिका तैयार करता है जिसने सर्वप्रथम जय तथा विजय को इन्हीं दोनों भाइयों के रूप में जन्म लेने के मार्ग पर स्थापित किया था।

श्रीमद्भागवत की दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



सन्दर्भ तथा श्रेय

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय पुस्तक, चतुर्दश अध्याय, पृष्ठ 194–199।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ सम्बद्धता अथवा समर्थन का कोई संकेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

